Gmail

econtent Of Arts <econtentofarts@gmail.com>

Security Council.M A(4th Semester)Anjani Kumar Ghosh,Political Science.

1 message

ANJANI GHOSH <anjanighosh51@gmail.com> Thu, Aug 6, 2020 at 8:06 AM
To: econtentofarts@gmail.com

संयुक्त राष्ट्रसंघ का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य विश्व शांति और सुरक्षा को बनाये रखना है। उन महान् दायित्व की पूर्ति के साधन के रूप में सुरक्षा परिषद् की स्थापना की गई है। इसीलिये संघ के घोषणा-पत्र के अन्तर्गत विश्व-शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने का मुख्य दायित्व सुरक्षा परिषद् पर ही डाला गया है। इस दृष्टिकोण से यह संयुक्त राष्ट्र संघ का महत्वपूर्ण तथा प्रभावकारी अंग है। गुड्सपीड के अनुसार आम लोगों की राय में संयुक्त राष्ट्रसंघ का मतलब है सुरक्षा परिषंद्। वैसे संघ के घोषणा-पत्र में सुरक्षा परिषद् का नाम महासभा के बाद आता है। परन्तु संगठन, कार्य एवं शिक्त् की दृष्टि से उसका स्थान पहला है। अर्ने उसे विश्व संगठन का बिजली घर बतलाते हैं। नार्मन वेटविच की राय में, सरकार और कार्यकारिणी के बीच वर्तमान हैं। वास्तव में संयुक्त राष्ट्र संघ के संस्थापकों ने सुरक्षा परिषद् को विश्व-समुदाय की शांति और सुव्यवस्था बनाये रखने का एक प्रभावी साधन बनाना चाहा था। इसलिये इसे विश्व-समुदाय के सजग प्रहरी तथा विश्व-शांति और सुव्यवस्था की रक्षा हेतु आरक्षी दायित्व से सम्पन्न किया गया था। परन्तु सिद्धान्त और व्यवहार में जितना अन्तर तथा विरोधाभास सुरक्षा परिष्द में दृष्टिगोचर होता है उतना संघ के किसी अन्य अंग में नहीं। सैद्धान्तिक द्दिष्क्कोण से सुरक्षा परिषद् की शक्तियां अभूतपूर्व हैं, क्योंकि यह चार्टर के सावतें भाग के अन्तर्गत शांति के खतरे, शांति-भंग एवं आक्रमण के कार्यों के सम्बन्ध में जो निर्णय लेती हैं उन्हें मानने एवं कार्यान्वित करने के लिए सदस्य-राज्यो के लिए बाध्यकारी हैं। लेकिन व्यवहार में उसकी शक्ति मुख्यतया औपचारिक महत्व की रह गई है। लगभग सभी राजनीतिज्ञ और नेता यह स्वीकार करते हैं कि परिषद् आशाओं के अनुकूल सफल नहीं रही हैं। महाशक्तियों की आपसी फूट, उनके पारस्परिक शीतयुद्ध तथा विचारधाराओं एवं क्षेत्रीय प्रश्नों पर उनकी टकराहट ने उसे पंगु बना दिया है। वह प्रस्ताव पारित कर सकती है,पर उसमें भी आपत्ति है। निषेधाधिकार उसे ज्यादातर गतिरोध की स्थिति में रखता है। परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के क्षेत्र में महासभा के दायित्वों में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है। यद्यपि सुरक्षा परिषद् की वैधानिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, किन्तु शान्ति एवं सुव्यवस्था के क्षेत्रों में इसने जो प्रयत्न किये हैं उन पर शीतयुद्ध की छाया रही है।

सुरक्षा परिषद का संगठन

चार्टर की मूल व्यवस्था के अनुसार सुरक्षा परिषद् एक ग्यारह सदस्यी संस्था थी। उनमें से 5 स्थायी और 6 अस्थायी सदस्य थे। चीन, फ्रांस, सोवियत रूस, ग्रेट ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका इसके स्थायी सदस्य है। और छः अस्थायी का चुनाव महासभा करती थी। सोवियत रूस के विघटन के बाद सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्य का उसका स्थान 'रूस' को प्रदान कर दिया गया। इस प्रकार अब सोवियत संघ का स्थान रूस ने ले लिया है। 1965 में चार्टर में संशोधन करके सुरक्षा-परिषद् के संगठन में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया गया। जिस समय संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई थी उस समय संघ के सदस्यों की संख्या सिर्फ इक्यावन थी। अतएव सुरक्षा परिषद् में ग्यारह सदस्य रखे गये। परन्तु सन् 1955 के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्य संख्या निरन्तर बढ़ती गई। एशिया और अफ्रीका के अनेक राज्य स्वतंत्र होकर इसके सदस्य बन गये। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक था कि सुरक्षा परिषद् की सदस्य-संख्या में वृद्धि की जाये। 17 दिसम्बर, 1965 को महासभा ने एक प्रस्ताव स्वीकार करके

चार्टर में संशोधन करने की एक सिफारिश की जिसमें यह कहा गया था कि सुरक्षा परिषद् की सदस्य-संख्या ग्यारह से बढ़ाकर पन्द्रह कर दी जाये। इस प्रस्ताव के आधार पर सदस्य राज्यों के अनुमोदन के बाद चार्टर का संशोधन हो गया। इस संशोधन के अनुसार सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यों की संख्या में तो कोई वृद्धि नहीं हुई, लेकिन अस्थायी सदस्यों की संख्या दस हो गई। इन अस्थायी सदस्यों का चुनाव संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्य सदस्यों में से दो वर्षों के लिये महासभा द्वारा किया जाता है। इसका विधान चार्टर की धारा 23 में किया गया है। इस धारा में यह भी कहा गया है कि अपनी अवधि की समाप्ति पर कोई भी सदस्य तुरन्त फिर निर्वाचित नहीं हो सकता। यह प्रावधान इसलिए रखा गया है कि राष्ट्रसंघ की कौंसिल में निर्वाचित सीटों पर अधिकांश चुनावों में मध्यवर्ती शक्तियों का ही नियंत्रण बना रहा और लघु शक्तियों को उसमें प्रवेश से वंचित रहना पड़ा। यद्यपि प्रतिनिधित्व का कोई निश्चित नियम नहीं है, तथापि इन सदस्यों का चुनाव करते समय महासभा को यह देखना चाहिये कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा कायम रखने में अमुक सदस्य ने कितना योगदान दिया है तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों को कहां तक माना है ? उनकी भौगोलिक स्थिति का भी ख्याल रखा जाना चाहिये। कौन सदस्य कहां तक इन शर्तों का पालन करता है, इसका निर्णय महासभा करती है। व्यवहार में विश्व-शांति और सुरक्षा की और सदस्य देशों के योगदान पर कम किन्तु समान भौगोलिक वितरण की शर्त पर अधिक ध्यान दिया जाता है। सन् 1965 के संशोधन के पूर्व सामान्यत: पश्चिमी और पूर्वी यूरोप से एक-एक, दक्षिणी अमेरिका से दो, अरब राज्यों से एक तथा ब्रिटिश डोमिनियन या राष्ट्रमण्डल से एक सदस्य अस्थायी सदस्य के रूप में चुने जाते थे किन्तु यह व्यवस्था अत्यन्त दोषपूर्ण थी। इसमें एशिया और अफ्रीका के देशों का उचित प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता था। संशोधन के आधार पर यह तय किया गया है कि इन अस्थायी पदों में पांच सीट अफ्रीका-एशियाई देशों को, दो लैटिन अमेरिकी देशों को, दो पश्चिमी यूरोपीय देशों को तथा एक पूर्वी यूरोप के देशों को मिले। 14 नवम्बर, 1977 को भारत सहित, 19 गुटनिरपेक्ष देशों ने सुरक्षा परिषद् की संख्या बढ़ाने हेतु एक प्रस्ताव महासभा में पेश किया। इस प्रस्ताव में मांग की गयी कि परिषद् के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 21 कर दी जाये। गुटनिरपेक्ष देशों का तर्क था कि इससे तीसरी दुनिया के देशों को परिष्द में समुचित प्रतिनिधित्व मिल सकेगा। अमरीका और सोवियत संघ का तर्क है कि इससे सुरक्षा परिषद् की कुशलता नकारात्मक रूप से प्रभावित होगी। संयुक्त राष्ट्रसंघ में 1980-81 से ही यह प्रस्ताव विचाराधीन है परन्तु इस पर आज तक मतदान नहीं हो सका है।

सुरक्षा परिषद् के संगठन की सबसे आपत्तिजनक बात महाशक्तियों की स्थिति की अपरिवर्तनशीलता है। चार्टर में स्थायी सदस्यों के लिये किसी प्रकार की शर्त का उल्लेख नहीं है, केवल पांच महाशक्तियों को स्थायी सदस्यता प्रदान कर दी गई है, और उनका नामोल्लेख चार्टर में कर दिया गया है। इससे चार्टर में स्थिरता आ गई है, यह निश्चित नहीं है कि वे पांचों वास्तविक रूप से सदा के लिये महान् शक्तियां बनी रहेंगी।' संभव है कि उनमें से कोई अपनी महानता खो दे अथवा किसी नये राज्य से कम महान् रह जाये ? ऐसी स्थिति में क्या उसे स्थायी सदस्यता से वंचित किया जा सकता है ? परन्तु हम जानते हैं कि कोई भी संशोधन बिना महान शक्तियों की सहमति के प्रभावकारी नहीं हो सकता। इसलिये सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता में परिवर्तन असंभव सा है,   इस व्यवस्था के कारण नये महान् राज्यों के लिए सुरक्षा परिषद् का द्वार बन्द है। सन् 1945 के बाद विश्व के अनेक राज्य महाशक्ति की श्रेणी में आ गये हैं। फिर भी, उन्हें महाशक्ति की श्रेणी से अपदस्त नहीं किया जा सकता। परिणामस्वरूप सुरक्षा परिषद् की स्थिति पांच महाशक्तियों के अनन्य क्लब के रूप में है।

सुरक्षा परिषद् की बैठक

सामान्यत: सुरक्षा परिषद् की बैठक प्रत्येक पखवाड़े होती है। इसका संगठन इस प्रकार बनाया गया है कि वह लगातार काम करती रहे। इसीलिये प्रत्येक देश सुरक्षा परिषद में अपना एक स्थायी सदस्य भेजता है। वह सदस्य

स्थायी रूप से न्यूयार्क में रहता है, जिससे आवश्यकतानुसार तुरन्त बैठक बुलाई जा सके। यह व्यवस्था राष्ट्रसंघ के विधान की उस व्यवस्था से भिन्न है जिसमें परिषद् की बैठक वर्ष में एक बार होने का विधान था, हालांकि व्यवहार में उसकी बैठकें वर्ष में तीन बार होती थीं। इसके विपरीत सुरक्षा परिषद् का अधिवेशन अनवरत ढंग से चालू रहता है, इसके सदस्य सदैव मुख्यालय में उपस्थित रहते हैं। बैठक अध्यक्ष के द्वारा बुलाई जाती है। सुरक्षा परिषद् के किसी सदस्य की मांग पर अथवा महासभा द्वारा किसी विवाद की ओर परिषद् का ध्यान आकर्षित किये जाने पर इसकी बैठक बुलाई जा सकती है। चार्टर में परिषद् की आवधिक बैठकों (Periodic Meetings) का भी विधान है। इस प्रकार की बैठकों में सदस्य देशों के विदेश मंत्री अथवा अन्य नियत अधिकारी के भाग लेने की व्यवस्था है। स्पष्टत: इस तरह की बैठकों का आयोजन विशेष महत्व की समस्याओं के समाधान के लिये किया जायेगा। किन्तु, अब तक इस तरह की कोई भी आवधिक बैठक नहीं हुई है। परिषद् की बैठक सामान्यत: संयुक्त राष्ट्र मुख्यालयों में होती हैं, पर आवश्यकता पड़ने पर किसी ऐसे स्थान पर जहां संकट का केन्द्र हो, इसकी बैठक हो सकती है। इस तरह की एक बैठक आदिस अबावा में हुई थी।

परिषद् के सदस्य देशों के प्रतिनिधि तो उसकी बैठक में भाग लेते ही हैं, उन देशों के प्रतिनिधि भी जो उसके सदस्य नहीं हैं, कुछ खास परिस्थितियों में उसकी बैठकों में भाग ले सकते हैं। धारा 31 के अनुसार यदि सुरक्षा परिषद् यह विचार करे कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के किसी ऐसे सदस्य का हित विशेष रूप से प्रभावित हो रहा हो जो उसका सदस्य नहीं है तो वह बैठक में भाग ले सकता है। पर, ऐसे सदस्य-राज्य को मत देने का अधिकार नहीं होता। राष्ट्रसंघ के अन्तर्गत ऐसे आमंत्रित सदस्य को मतदान का अधिकार था। सुरक्षा परिषद् ही यह निर्धारित करती है कि किसी सदस्य के हित कब प्रभावित होते हैं। धारा 32 के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ का कोई सदस्य, जो सुरक्षा परिषद् का सदस्य नहीं है अथवा वैसा राज्य, जो संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं हो, यदि किसी विवाद से सम्बद्ध हो तथा उस पर सुरक्षा परिषद् में विचार-विमर्श किया जा रहा हो तो उसे विशेष रूप से उस विवाद से सम्बद्ध विचार-विमर्श में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। ईरान व सोवियत रूस के झगड़े में ईरान को तथा इंडोनेशिया व नेदरलैंड के झगड़े में आमन्त्रित किया गया था। सन् 1962 में कश्मीर के प्रश्न पर हिन्दुस्तान एवं पाकिस्तान को आमन्त्रित किया गया था। ऐसे राज्य जिनके बीच झगड़े नहीं है तथा जो इसके सदस्य नहीं हैं वैसे राज्यों को भी आमन्त्रित किया जा सकता है। यदि उन्होंने झगड़े में विशेष दिलचस्पी का प्रदर्शन किया हो, जैसे इंडोनेशिया तथा नेदरलैण्ड के झगड़े में फिलिस्तीन के। झगड़े को प्रस्तुत करने के लिए वैसे राज्य को भी यह आमन्त्रित करती है। जैसे इण्डोनेशिया और नेदरलैण्ड के झगड़े में हिन्दुस्तान एवं आस्ट्रेलिया को आमन्त्रित किया गया था। वैसे राज्य जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य नहीं हैं उन्हें सुरक्षा परिषद् वाद-विवाद में भाग लेने के लिए आमन्त्रित कर सकती है, परन्तु वैसे देशों की बैठक में भाग लेने की शर्तें परिषद् स्वयं निर्धारित करती है। कोरिया युद्ध के समय साम्यवादी चीन को सुरक्षा परिषद् में आमिन्त्रत किया गया था।

सुरक्षा परिषद का अध्यक्ष

सुरक्षा परिषद् का एक अध्यक्ष होता है। यह परिषद् की बैठक का संचालन करता है। इस पद पर परिषद् के सदस्य बारी-बारी से एक-एक महीने के लिये अपने देश के नाम के प्रथम अक्षर (अंग्रेजी वर्णमाला के) के क्रमानुसार आसीन होते हैं। अध्यक्ष सभा की कार्रवाइयों को संचालित करता है, किसी मामले को परिषद् को समिति में विचारार्थ भेजता है तथा आदेश जारी करता है। यद्यपि अध्यक्ष का पद विशेष महत्व का नहीं होता किन्तु मतदान के पूर्व सदस्य राज्यों तथा विवादग्रस्त पक्षों से अनौपचारिक वार्ताओं में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। कभी-कभी उसे राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का अवसर प्राप्त हो जाता है। उदाहरण के लिये भारत-कश्मीर विवाद के अवसर पर नार्वे के प्रतिनिधि के सुझाव पर परिषद् ने अपने अध्यक्ष को अधिकृत किया कि वह

दोनों पक्षों से मिलकर विवाद के संतोषप्रद हल की संभावना का पता लगाये। ऐसा भी देखा गया है कि राजनीतिक लाभ के लिये कभी-कभी अध्यक्ष परिक्षद् की बैठक बुलाना तब तक स्थगित रखा जब तक अमरीकी पक्ष की सरकार की वहां स्थापना नहीं हुई। इसी तरह रोडशिया के प्रश्न पर सन् 1966 में अध्यक्ष ने लगभग अडतालीस घंटो तक परिषद् की संकटकालीन बैठक बुलाने से इन्कार कर दिया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ अवसरों पर अध्यक्ष का पद काफी महत्वपूर्ण हो जाता है। सुरक्षा परिषद् की प्रक्रिया के नियमों के अनुसार अध्यक्ष वैसी बैठकों की अध्यक्षता नहीं करेगा जिसमें ऐसे प्रश्नों पर विचार हो रहा हो जिससे उसका देश प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित हो।

सुरक्षा परिषद् के अन्य कर्मचारी जैसे किरानी, अनुवादक आदि सचिवालय द्वारा प्रदान किये जाते हैं। सभी महत्वपूर्ण अभिलेखों, प्रस्तावों तथा सार्वजनिक बैठकों की कागजातों का फ्रांसीसी, अंग्रेजी, रूसी, स्पेनिश तथा चीनी भाषाओं में प्रकाशित किया जाता है।

सुरक्षा परिषद की मतदान-प्रणाली

सुरक्षा परिषद् की मतदान-व्यवस्था बड़ी महत्वपूर्ण है। चार्टर का 27वां अनुच्छेद इस व्यवस्था से सम्बन्धित है। इसके अनुसार सुरक्षा परिषेद् के प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार है। पर स्थिति इतनी साधारण नहीं है। परिषद् के कार्यक्रम को दो भागों में बांटा गया है-प्रक्रिया सम्बन्धी (Procedural) तथा अन्य महत्वपूर्ण (Substantive)। प्रक्रिया-सम्बन्धी बातों में परिषद् के किन्हीं नो (9)सदस्यों के स्वीकारात्मक मत (Affirmative Vote) आनें से प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है। अन्य सभी मामलों में कम-से-कम नो सदस्यों के स्वीकारात्मक वोटों में पांच स्थायी सदस्यों का स्वीकारात्मक वोट अनिवार्य है। इन पांच स्थायी सदस्यों में से यदि कोई भी अपनी असहमति प्रकट करे और अपना वोट प्रस्ताव के विरुद्ध दे दे तो वह प्रस्ताव अस्वीकृत समझा जायेगा। इस उपबन्ध के फलस्वरूप सुरक्षा परिक्षद् की प्रत्येक स्थायी अथवा महान् शक्ति को निषेधाधिकार या 'वीटो' प्राप्त हो गया है। हालांकि 'वीटो' शब्द का प्रयोग चार्टर में कहीं नहीं किया गया है, किन्तु किसी भी सदस्य को चाहे वह स्थायी सदस्य हो अथवा अस्थायी शांतिपूर्वक सुलझाये जाने वाले ऐसे मामलों में मतदान का अधिकार नहीं होगा, जिससे उसका अपना सम्बन्ध हो। यदि कोई स्थायी सदस्य अपने मत का प्रयोग नहीं करता तो यह निषेधाधिकार नहीं कहलाता।

सुरक्षा परिषद् की मतदान-प्रणाली से निष्कर्ष यही निकलता है कि किसी भी महत्वपूर्ण कार्य को सफल बनाने के लिये स्थायी सदस्यों का मत आवश्यक है और यही महाशक्तियों की सर्वसम्मति का सिद्धांत है। आई0पी0 चेज का मत है : "सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों की स्थिति अनोखी है। इससे परिषद् की राजनीतिक समस्याओं की महत्ता का पता चलता है। सुरक्षा परिषद् की मतदान-व्यवस्था इसका सबसे अद्भुत लक्षण है। निषेधाधिकार का प्रश्न संयुक्त राष्ट्रसंघ का सबसे कठिन प्रश्न है।"

सुरक्षा परिषद् के सहायक अंग

सुरक्षा परिषद् एक छोटी संस्था है इसलिये यह समिति और आयोगों की सलाह कम लेती है। समिति पद्धति इसके लिये उपयोगी नहीं है। आमतौर से यह अपना कार्य स्वयं करती है। फिर भी इसकी दो स्थायी समितियां हैं- विशेषज्ञों की समिति तथा नये सदस्यों के प्रवेश का कार्य देखने वाली समिति। विशेषज्ञ समिति जिसकी स्थापना जनवरी, 1956 में हुई थी, कार्यविधि की नियमावली के सम्बन्ध में अध्ययन तथा परामर्श देती है। यह ऐसे अन्य मामलों पर भी विचार करती है जो परिषद् के द्वारा उसके पास भेजे जाते हैं। नये सदस्यों के प्रवेश का कार्य देखने

वाली समिति की स्थापना मई, 1946 में हुई थी। परिषद् द्वारा विचारार्थ प्रस्तुत किये जाने पर यह संघ की सदस्यता के लिये अभ्यर्थी राज्यों के प्रतिवेदन की जांच करती है। चार्टर की धारा 47 के अनुसार एक सैनिक स्टॉफ समिति भी होती है जो सुरक्षा परिषद् को शांति बनाये रखने के लिये उसकी सैन्य आवश्यकताओं, उसकी अधीन सेना का निर्देशन, शस्त्रों के नियमन एवं सेना व शस्त्रों में पांच स्थायी सदस्य देशों के 'चीफ आफ स्टाफ' अथवा इनके प्रतिनिधि होते हैं। सोवियत रूस तथा अन्य सदस्य-राज्यों में मतभेद रहने के कारण यह समिति कुछ भी महत्वपूर्ण कार्य करने में असमर्थ रही।

सन् 1946 में महासभा ने एक अनुशक्ति आयोग स्थापित किया। यह आयोग सुरक्षा परिषद् को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करता था। शांति और सुरक्षा सम्बन्धी विषयों के लिये यह आयोग सुरक्षा परिषद् के प्रति उत्तरदायी था। फरवरी, 1847 में सुरक्षा परिषद् ने परम्परागत शस्त्र-सम्बन्धी आयोग की स्थापना की। इस आयोग ने सुरक्षा परिषद् के सब सदस्य रहते थे। शस्त्रों के नियंत्रण, कम करने की व्यवस्था और अन्य अनेक कार्य इस समिति के द्वारा किये जाते थे। सन् 1952 में इन दोनों आयोगों की जगह पर निरस्त्रीकरण आयोग और उसकी उपसमिति की स्थापना की गयी। सन् 1957 में महासभा ने 1958 के लिये इस आयोग में 14 सदस्य और बढ़ा दिये गये। इस प्रकार इस आयोग की सदस्य-संख्या 25 हो गई। चूंकि इस आयोग के अधिकतर सदस्य पश्चिम गुट के पक्षपाती थी, इसलिए रूस ने इसके कार्यों में भाग न लेने की इचछा व्यक्त की। अत: सन् 1956 में महासभा ने यह निश्चय किया कि संयुक्त राष्ट्र के सब सदस्य निरस्त्रीकरण आयोग के सदस्य बना दिये जायें।

सुरक्षा परिषद् द्वारा कुछ और आयोग और समितियां गठित की गयी हैं। इण्डोनेशिया के लिये इसने एक सत्प्रयास समिति (Good Office Committee) स्थापित की। जनवरी 1949 में इस समिति के स्थान पर इण्डोनेशिया के लिये संयुक्त राष्ट्र आयोग स्थापित किया गया। इस आयोग ने हालैण्ड और इंडोनेशिया के बीच मध्यस्थता का काम किया। सुरक्षा परिषद् ने समय-समय पर कुछ अन्य आयोगों की भी रचना की। उनमें प्रमुख हैं-भारत-पाकिस्तान आयोग, पैलेस्टाईन के लिये युद्ध-विश्रान्ति आयोग आदि। काश्मीर और पैलेस्टाईन की समस्या को सुलझाने के लिए इसने मध्यस्थ नियुक्त किये।

सुरक्षा परिषद् के कार्य और शक्तियां

सुरक्षा परिषद् का मुख कार्य शांति और सुव्यवस्था बनाये रखना है। इस उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में राष्ट्रसंघ की कौंसिल की भांति सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्रसंघ की सम्पूर्ण सदस्यता के अभिकर्ता के रूप में कार्य करती है। धारा 24 के अन्तर्गत सदस्य राज्यों ने यह स्वीकार किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के क्षेत्र में सुरक्षा परिषद् उनके बदले में कार्य करेंगी। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि परिषद् मनमाने ढंग से कार्य करने के लिये स्वतंत्र है। वास्तव में सुरक्षा परिषद् अपने कार्यों के निर्वहन में संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों और सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करने के लिये बाधित है।

यदि उसके कार्य संघ के उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों के अनुसार नहीं हो तो सदस्य-राज्य उसकी अवज्ञा कर सकते हैं। अन्यथा वे धारा 25 के अन्तर्गत सुरक्षा परिषद् के निर्णयों को मानने तथा कार्यान्वित करने को बाध्य है। सारांश यह है कि सुरक्षा परिषद् की शक्तियों के सम्बनध में सामूहिक सुरक्षा के सिद्धान्त को अपनाया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार विश्व-शान्ति की रक्षा संसार के सभी राष्टऋों का संयुक्त उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिये वे संयुक्त परिषद् को सौंपा गया है। इस दृष्टिकोण से सुरक्षा परिषद् की स्थिति संघ के सभी अंगों में सबसे अधिक शक्तिशाली तथा महत्वपूर्ण हो जाती है। ई0 पी0 चेज ने लिखा है : "सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्रसंघ का हृदय है। संकट का समय हो या शांति कार्य, संयुक्त राष्ट्र के दूसरे अंग कार्य कर रहे हों या न कर रहे हों, साल का कोई भी

समय हो या कैसा ही मौसम हो, सुरक्षा परिषद् अपना कार्य करती रहती है।" संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा-पत्र की धारा 24, 5 और 26 में सुरक्षा परिषद् के कार्यों और शक्तियों का उल्लेख किया गया है। संक्षेप में हम उन्हें इन ढंग से निरूपित कर सकते हैं-´

1. संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाये रखना,
2. ऐसे किसी भी विवाद अथवा स्थिति के बारे में जांच-पड़ताल करना जिससे अन्तर्राष्ट्रीय तनाव एवं संघर्ष पैदा होने का खतरा हो;
3. झगड़ों के निबटारे के लिचे उपायों या समझौते की शर्तों की सिफारिश करना;
4. हथियारों के नियमन की व्यवस्था के बारे में योजनायें तैयार करना;
5. शांति के लिये खतरा अथवा आक्रामक कार्रवाई की स्थिति को निश्चित करना तथा उसके सम्बन्ध में क्या कदम उठायें जायें, इसकी सिफारिश करना;
6. आक्रमण को रोकने अथवा बन्द करने के लिये सदस्य-राज्यों से आर्थिक अनुशक्ति तथा अन्य उपायों, जिनमें बल-प्रयोग नहीं शामिल हो, लागू करने का अनुरोध करना;
7. आक्रमण के विरुद्ध सैनिक कार्यवाई करना;
8. नये सदस्य बनाना, निलंबित करना एवं निष्कासित करना;
9. उन शर्तो का निर्धारण जिनमें कोई राज्य अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की सविधि का पक्ष हो सकता है;
10. सैनिक महत्व के क्षेत्रों में संयुक्त राष्ट्रसघ के न्यास कार्यों को लागू करना;
11. महासचिव की नियुक्ति के लिये महासभा से सिफारिश करना तथा महासभा के साथ मिलकर अन्तर्राष्टर्ऱीय न्यायालय के न्यायाधीशों का निर्वाचन करना तथा
12. महासभा के समक्ष वार्षिक तथा विशिष्ट प्रतिवेदन प्रस्तुत करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुरक्षा परिषद् को काफी व्यापक अधिकार तथा दायित्व प्रदान किये गये हैं। इन दायित्वों को निभाने के लिये परिषद् को चार्टर के अध्याय 6, 7, 8 और 12 में विशेष शक्तियां दी गई हैं। अध्याय 6 विवादों के शांतिपूर्ण समाधान से सम्बन्धिल है जिसमें 33 से 48 तक अनुच्छेद सम्मिलित हैं। अध्याय 7 शांति को खतरे में डालने वाली, शांति-भंग और आ़मण की चेष्टाओं के बारे में कार्यवाही से सम्बन्धित है; इसमें 39 से 51 तक के अनुच्छेद शामिल हैं। अध्याय 8 प्रादेशिक प्रबन्ध से सम्बन्धित हैं। जिसमें 52 से 54 तक के अनुच्छेद शामिल हैं। अध्याय 12 अन्तर्राष्ट्रीय न्याय-पद्धति की चर्चा करता है और इसमें सुरक्षा परिषद् के विभिन्न न्याय सम्बन्धी अधिकार सम्मिलित हैं। उपर्युक्त सभी अध्यायों में सुरक्षा परिषद् के जिन कार्यों और शक्तियों का उल्लेख है वे इस प्रकार हैं :

विवादों का शांतिपूर्ण समझौता

अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान परिषद् का एक महत्वपूर्ण कार्य है। ऐसे विवादों से निपटने में परिषद् समय-समय पर विभिन्न उपायों का आश्रय लेती रही है। प्लानों तथा रिग्स ने परिषद के विशिष्ट उपायों में विचार-विमर्श (Deliberations) अन्वेषण अथवा खोज-बीन (Investigation), सिफारिश (Recommendation), समझौता (Councillation), मध्यस्थत (Interposition), अपील (Appeal) तथा आदेश (Enforcement) गिनाये हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर का छटा अध्याय झगड़ों को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने की व्यवस्था करता है। इस अध्याय में झगड़ों को तय करने के विभिन्न ढंग बताये गये हैं। विवाद से सम्बन्धित पक्ष ये यह आशा की जाती है कि पहले से बातचीत, जांच-पड़ताल, मध्यस्थता, पंच-निर्णय, क्षेत्रीय अभीकरणों एवं व्यवस्थाओं की सहायता तथा अन्य शांतिपूर्ण तरीकों के माध्यम से आपनी झगड़ों का फैंसला करेंगे। आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षा परिषद्

दोनों पक्षों को इन विधियों द्वारा अपने विवादों का फैसला करने के लिये कह सकती है। धारा 34 के द्वारा सुरक्षा परिषद् को विवादों एवं परिस्थितियों की जांच का महत्वपूर्ण अधिकार दिया गया है। इसके अनुसार सुरक्षा-परिषद् किसी ऐसे विवाद या परिस्थिति की जांच कर सकती है जिससे अन्तर्राष्टर्त्रीय विवाद या झगड़े पैदाहोने की संभावना हो। वह यह जांच करेगी कि विवाद या परिस्थिति का कायम करना अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिये खतरा तो नहीं पैदा कर रहा है। आवश्यक जांच-पड़ताल के लिये परिषद् का अध्यक्ष सभी पक्षों से पूछताछ कर सकता है अथवा इस उद्देश्य के लिये एक समिति अथवा एक आयोग भीी नियुक्त किया जा सकता है। जांच-पड़ताल द्वारा यद्धपि परिष्द विवाद से सम्बन्धित सभी तथ्यों का एकदम सही मूल्यांकन नहीं कर पाती फिर भी ऐसी परिस्थिति में पहुंचने की गुंजाइश रहती है कि परिषद् कामचलाऊ समाधान की दिशा में आगे बढ़ सके।

सुरक्षा परिषद्द स्वयं किसी विवाद अथवा परिस्थिति की जांच तो कर ही सकती है। संयुक्त राष्ट्रसंघ का कोई सदस्य अथवा महासचिव भी उसका ध्यान ऐसे विवाद अथवा ऐसी परिस्थिति की ओर आकृष्ट कर सकता है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा परिक्षद् अथवा महासभा, के समक्ष कोई ऐसा विवाद ला सकता है जिसका कि स्वयं वह एक पक्ष है यदि उसे शांतिपूर्ण समाधान सम्बन्धी चार्टर की व्यवस्था स्वीकार हो।

यद्यपि विवादग्रस्त पक्षों का दायित्व है कि वे विवादों के समाधान किसी भी शांतिपूर्ण तरीके से करे किन्तु सुरक्षा परिषद् धारा 36 के अनुसार विवाद के किसी भी क्रम से समाधान हेतु कोई भी उपर्युक्त उपाय अथवा प्रक्रिया की सिफारिश कर सकती है। किन्तु सिफारिश करते समय उसे इस बात का ध्यान रखना होगा कि पक्षों ने किन-किन उपायों का पहले उपयोग किया है। परिषद् का दायित्व यह भी देखना है कि वैधानिक विवाद समाधान के लिये अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष भेजो जायें।

अगर विवाद के विभिन्न पक्ष शांतिपूर्ण तरीके से किसी हल पर पहुंचने में असमर्थ हो तो उनका कर्तव्य है कि वे विवाद को सुरक्षा परिषद् को सौंप दें। सुरक्षा परिषद् विवादग्रस्त पक्षकारों के अनुरोध पर विवाद के शांतिपूर्ण समाधान के उद्देश्य से सिफारिशें कर सकती है। यदि सुरक्षा परिषद् यह निश्चय करती है कि विवाद से अन्तर्राष्ट्रीय शांति के भंग होने का भय है तो वह स्वयं ऐसे निपटारे की व्यवस्था का सुझाव दे सकती है जो वह न्यायोचित समझे।

सम्बद्ध पक्षों के अभाव में अन्य पक्षों द्वारा भी परिषद् के समक्ष कोई अन्तर्राष्ट्रीय विवाद को उठाने की व्यवस्था की गयी है। यह व्यवस्था एक विशेष उद्देश्य से की गई है। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि कोई राज्य किसी दूसरे राज्य को वैद्य सरकार को शक्ति-प्रयोग या अन्य तरीके से अपदस्थ करा देता है और उसके स्थान पर अपने मनोनुकूल कठपुतली सरकार को पदासीन करा देता है। कठपुतली सरकार उसके पक्ष में ब्यान देने लगती है और अक्सर उसे भारी सुविधायें प्रदान करने लगती हैं। ऐसी स्थिति में सम्बद्ध पक्ष आक्रमण की कार्रवाही को परिषद् के सामने कैसे ला सकता है ? अत: चार्टर में यह व्यवस्था की गयी है कि कोई भी सदस्य राज्य ऐसे मामले को उठा सकता है। व्यावहारिक राजनीति की दृष्टि से यह व्यवस्था काफी उपयोगी है।

विवादों के शांतिपूर्ण समाधान से सम्बद्ध विभिन्न धाराओं पर गौर करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल एक स्थल पर सुरक्षा परिषद् द्वारा समझौता की शर्तों की सिफारिश का जिक्र है (धारा 39 (2) अन्यथा सुरक्षा परिषद् समझा-बुझाकर दोनों पक्षों को वार्ता या अन्य साधनों से विवाद के समाधान के लिये राजी करती है। वास्तव में यहां परिषद् का काम अनुशंसाात्मक है जिसका अभिप्राय यह है कि इसकी अनुशंसा की अवहेलना की जा सकती है। परन्तु गुडरीव का विचार है कि अध्याय सात के अन्तर्गत परिषद् के बलशाली अधिकार को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि विवादग्रस्त पक्ष शांतिपूर्ण समाधान के लिये सुरक्षा परिषद के सुझावों की अवहेलना नहीं करेंगे।

आदेशात्मक कार्य

चार्टर के अध्याय 7 में उन तरीकों का उल्लेख किया गया है जिनका सहारा सुरक्षा परिषद उस स्थिति में ले सकती है जब झगड़ों का फैसला शांतिपूर्ण समझौते के तरीके से नहीं हो। इस अध्याय का शीर्षक है "शांति को खतरा, शांति का भंग और आक्रामक कार्रवाईयों के सम्बन्ध में कार्रवाही।" इसके अन्तर्गत परिषद् को दो तरी की दंड-व्यवस्था लागू करने का अधिकार है : प्रथम, कूटनीतिक, आर्थिक एवं वित्तीय दंड-व्यवस्था, तथा द्वितीय, सैनिक दंड व्यवस्था। किन्तु कार्स्वाई करने के पूर्व शांति-भंग का निध्र्धारण आवश्यक है। धारा 59 अनुसार परिषद् इस बात का निर्णय करेगी कि कौन-सी चेष्टायें शांति को खतरे में डालने वाली, शांति भंग करने वाली और आक्रमण की चेष्टायें समझी जा सकती हैं। वही सिफारिश करेगी और तय करेंगी कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा कायम करने अथवा फिर से परिस्थिति अधिक नहीं बिगड़ने पाये। इस उद्देश्य से वह विवाद के पक्षों को कतिपय आवश्यक अस्थायी उपायों का अनुकरण करने के लिये कह सकती है। ऐसे अस्थायी उपाय पक्षों के अधिकारों, दावों या स्थितियों को किसी प्रकार से प्रभावित नहीं करेंगे। यद्यपि इस धारा में अस्थायी उपायों का वर्णन नहीं है किन्तु उनके अन्तर्गत ये विषय आते हैं, युद्ध-विराम, युद्ध-क्षेत्रों या खास प्रदेशों से सेना की वापसी, खास क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सेना का रखा जाना तथा आक्रात्मक कार्रवाई को बन्द करना। पिछले वर्षों के अनुभव से यह सिद्ध होता है कि सुरक्षा परिषद् ने इस अधिकार का अनेक अवसरों पर प्रयोग किया है। 15 जुलाई 1948 को अरबी और इजराइल को युद्ध-विराम का आदेश इसका उदाहरण है। सन् 1956 के स्वेज-संघर्ष के दरम्यान ऐसे ही आदेश के फलस्वरूप ही इजरायल को मि० के अधिकृत क्षेत्र से अपनी सेनायें वापिस बुला लेनी पड़ी थी। सन् 1966 में अरब-इजराइल को युद्ध-विराम संघर्ष में इजरायल को अरबों के अधिकृत क्षेत्र से अपनी सेनाएं बुला लेने को कहा गया था। 21 दिसम्बर, 1971 को भारत और पाकिस्तान को युद्ध-विराम करने का आदेश दिया गया। अस्थायी उपायों का अनुकरण नहीं करने पर सुरक्षा परिषद् को अन्य कदम उठाने का अधिकार है। 2 अगस्त 1990 को जब इराक के कुवैत पर कब्जा कर लिया तो सुरक्षा परिषद् ने प्रस्ताव पारित कर इराक को कुवैत खाली कर देने का आदेश दिया।

अध्याय सात के अन्तर्गत सुरक्षा परिषद् किसी राज्य के विरुद्ध, जिसे वह अन्तर्राष्ट्रीय शांति भंग करने का दोषी मानती है अथवा जिसका व्यवहार अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिये आपत्तिजनक समझती है :-, (1) आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने, (2) उससे राजनयिक सम्बन्ध तोड़ने, (3) रेल, समुद्र, वायु, डाक, तार, रेडियो आदि संचार साधन काटने का आदेश दे सकती है। आर्थिक प्रतिबंध पहले आंशिक अर्थात् कुछ खास वस्तुओं के आयात-निर्यात सम्बन्धी होता है। सुरक्षा परिषद् अपने सदस्य-राज्यों को यह आदेश देती है कि वे आक्रामक देश से इन वस्तुओं का व्यापार नहीं करे। दक्षिण अफ्रीकी संघ तथा रोडिशिया के विरुद्ध सुरक्षा परिषद् ने आर्थिक अस्त्र का प्रयोग किया था। पर, ये दोनों प्रतिबन्ध पूर्णतया विफल रहे, क्योंकि प्रतिबन्ध को कड़ाई के साथ लागू नहीं किया जा सका। इस तरह की कार्रवाई तभी सफल हो सकती है, जब पूरी ईमानदारी तथा कड़ाई के साथ संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य-राज्य उन पर अमल करें। 2 अगस्त 1960 को कुवैत पर कब्ज़ा करने के रूप में सुरक्षा परिषद् ने इराक के विरुद्ध आर्थिक और सैनिक प्रतिबन्ध लागू किया। आर्थिक प्रतिबन्ध के साथ-साथ कूटनीतिक सम्बन्ध तोड़ने तथा यातायात, संचार आदि की सुविधायें रोक देने का आदेश भी दिया जा सकता है। उदाहणार्थ, अप्रैल 1992 में सुरक्षा परिषद् ने लीबिलया के खिलाफ आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने का निर्णय लिया।

अगर सुरक्षा परिषद् समझे कि उपर्युक्त उपाय असंतोषप्रद है तो हवाई, सामुद्रिक या स्थल सेनाओं के माध्यम से कार्रवाई कर सकती है। इसकार्य के अन्तर्गत प्रदर्शन, नाकेबन्दी एवं सदस्य-राज्यों की स्थल, जल एवं वायु सेनाओं द्वारा कार्रवाई सम्मिलित है। सैनिक दंड के निर्णय में सुरक्षा परिषद् को पूरी स्वतंत्रता है। पिछले लगभग छह दशकों में फिर खाड़ी संकट के समय (1990-91) इराक के खिलाफ सैनिक कार्यवाही की गयी। एक बार

कोरिया के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्रसंघ के झंडे के नीचे सैनिक कार्यवाही की गई थी। शांति-स्थापना के लिए सुरक्षा परिषद् द्वारा सन् 1960 में कांगों तथा 1964 में साइप्रस में सेना भेजी गई किन्तु उसे सैनिक कार्रवाई नहीं कहा जा सकता।

सैनिक दण्ड-व्यवस्था के सम्बन्ध में सुरक्षा परिषद् के निर्णयों को कार्यान्वयन किस तरह से हो, उसके लिये 43 से 47 तक की धाराओं में व्यवस्था है। धारा 43 के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाये रखने में सहयोग देने के लिये संघ के सब सदस्यों का यह कर्तव्य है कि सुरक्षा परिषद् के मांगने पर और विशेष समझौते अथवा समझौतों के अनुसार अपनी सशस्त्र सेनाएं सहायता तथा सुविधायें जिनमें मांग-अधिकार सहयोग भी शामिल होंगे, मुहैय्या करेंगे। सेनाओं की संख्या, उनके प्रकार, उनकी तैयारी और स्थिति आदि के बारे में निश्चय समझौते या समझौते किये जायेंगे और इस प्रकार के समझौतों की बातचीत सुरक्षा परिषद् की प्रेरणा से जल्दी-से-जल्दी शुरु की जानी चाहिये। वे समझौते सुरक्षा परिषद् और सदस्यों के समुदाय के बीच में होंगे। इनका अनुसमर्थन सम्बद्ध राष्ट्रों द्वारा उनकी संवैधानिक प्रक्रियाओं के द्वारा ही होना आवश्यक है। इन उपबंधों के फलस्वरूप सामूहिक सुरक्षा की योजना तभी फलवती हो सकती है जब सामान्य या विशेष समझौते किये जायें। यद्यपि सदस्य राज्य सुरक्षा परिषद् के निर्णय को मानने के लिये वचनबद्ध है किन्तु समझौते के बिना सैनिक कार्यवाही में भाग नहीं ले सकते। अनुच्छेद 45 के अनुसार सदस्य सामूहिक अन्तर्राष्ट्रीय कार्रवाई के लिये अपनी राष्ट्रीय वायुसेना के दल जल्दी-से-जल्दी उपलब्ध करेंगे ताकि संयुक्त राष्ट्रसंघ तुरन्त सैनिक कार्यवाई कर सके। इन सैनिक दलों की संख्या, तैयारी आदि के बारे में निश्चय के लिये परिषद् को उसकी सैनिक स्टाफ समिति मदद देगी। यही परिषद् के अधीन सशस्त्र सेनाओं का संचालन करेगी।

सुरक्षा परिषद् के निर्णय को कार्यान्वित करने के लिये सदस्य-राष्ट्र एक-दूसरे का हाथ बटाएंगे। जब अपराधी राज्य के खिलाफ सुरक्षा परिषद् के द्वारा कोई आदेशात्म्क कार्यवाही की जाये और इस कार्यवाही के कारण किसी अन्य राज्य को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़े तो उन कठिनाईयों को सुलझाने के लिये यह सुरक्षा परिषद् की सलाह ले सकता है। धारा 51 में यह कहा गया है कि चार्टर में लिखित कोई भी बात राज्यों को व्यक्तिगत और सामूहिक स्वसुरक्षा के अधिकार से वंचित नहीं करेगी। इस प्रकार उनका व्यक्तिगत अथवा सामूहिक आत्मरक्षा का अधिकार ज्यों-का-त्यों रखा गया है जब तक कि सुरक्षा-परिषद् ने अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को कायम रखने के लिये आवश्यक कदम न उठा लिया हो। आत्मरक्षा के लिये किसी राष्ट्र द्वारा उठाये गये कदम की सूचना सुरक्षा परिषद् को तुरन्त देनी चाहिये। साथ ही अन्तर्राष्ट्रत्रीय शांति और सुरक्षा को बनाये रखने के लिये सुरक्षा परिषद के दायित्व पर उस कार्य का प्रभाव नहीं पड़ता। इसका तात्पर्य यह है कि सुरक्षा परिषद् कार्य करने का अधिकार अक्षुण्ण बना रहता है।

क्षेत्रीय व्यवस्थाएं

चार्टर क आठवें अध्याय में क्षेत्रीय प्रबन्ध की व्यवस्था बतलायी गई है। अन्तर्राष्ट्रीय शांति और व्यवस्था के दृष्टिकोण से किसी क्षेत्र में क्षेत्रीय संस्थाओं की स्थापना की जा सकती है। लेकिन इन व्यवस्थाओं और संस्थाओं को उनके कार्य-कलापों को संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्य और सिद्धान्तों के अनुकूल होना चाहिये। यह आशा प्रकट की गयी है कि सदस्य-राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का सहारा लेने के पहले इन क्षेत्रीय संस्थाओं के द्वारा स्थानीय झगड़ों को सुलझाने का प्रयत्न करेंगे। परिषद् भी स्थानीय विवादों के सुझाव के लिये क्षेत्रीय व्यवस्थाओं को प्रोत्साहित करेगी। परिषद् जब कभी उचित समझे तो क्षेत्रीय अभिकरणों और प्रबन्धों को किसी देशके विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए प्रयोग में ला सकती है। परन्तु क्षेत्रीय प्रबन्धों या अभिकरणों के अन्तर्गत जो कार्रवाही की जायेगी वह सुरक्षा

परिषद् की अनुमति के बिना नहीं की जा सकेगी। अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के सम्बन्ध में क्षेत्रीय व्यवस्थाओं या संस्थाओं द्वारा उठाये गये किसी प्रकार के कदम की सूचना सुरक्षा परिषद्! को हमेशा मिलनी चाहिये।

अन्य कार्य

यह ठीक है कि चार्टर के द्वारा सुरक्षा परिषद् को शांति और सुरक्षा के क्षेत्र में प्राथमिक दायित्व सौंपा गया है किन्तु अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी उसे कतिपय शक्तियों सें विभूषित किया गया है जिनमें से अधिकांश का प्रयोग वह महासभा के साथ मिलकर करती है। प्लानों तथा रिन्त के अनुसार ये कार्य हैं-निर्वाचनात्मक (Elective), प्रेरणात्मक (Initiatory), और निरीक्षणात्मक (Supervisory) निर्माताओं द्वारा परिषद् को ये कार्य इस दृष्टि से सौंपे गये हैं कि महाशक्तियां महत्वपूर्ण संगठनात्मक मामलों पर अपना कुछ नियंत्रण रख सके। सुरक्षा परिषद् के निर्वाचनात्मक कार्यों में महासचिव की नियुक्ति का कार्य महत्वपूर्ण है। धारा 97 यह व्यवस्था करती है कि महासचिव की नियुक्ति महासभा द्वारा सुरंक्षा परिषद् की सिफारिश पर होगी। उस सिफारिश में सुरक्षा परिषद् के सभी स्थायी सदस्यों की सहमति आवश्यक है। इसका अभिप्राय यह है कि महासचिव के पद पर ऐसे व्यक्ति की ही नियुक्ति हो सकती है जो सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों को मान्य हो। महासभा के साथ मिलकर सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों का निर्वाचन करती है। संघ में नये सदस्यों के प्ररवेस का कठोर नियन्त्रण है। सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर ही महासभा किसी राज्य के प्रवेश पर धारा 4 के अनुसार निर्णय ले सकती है। इस सिफारिश में सभी स्थायी सदस्यों की सहमति आवश्यक है। चार्टर के अन्तर्गत परिषद को एक और महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान किया गया है। यह अधिकार सदस्यों के निलम्बन और निष्कासन से सम्बन्धित है। धारा 5 के अनुसार ऐसा सदस्य जिसके विरुद्ध दण्ड की कार्यवाही लागू की गई हो, महासभा द्वारा सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर सदस्यता के अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के प्रयोग में निलम्बित किया जा सकता है। धारा 6 के अनुसार ऐसा सदस्य जिसने लगातार चार्टर के सिद्धान्तों की अवहेलना की हो, महासभा के द्वारा सुरक्षा परिषद् की सिफारिश पर निष्कासित किया जा सकता है।

चार्टर की धारा 26 के अनुसार सुरक्षा परिषद् को यह दायित्य सौंपा गया है कि वह सैनिक स्टाफ समिति की सहायता से शास्त्रों के नियमन की योजना बनाये तथा उसे सदस्य-राज्यों को प्रस्तुत करें। परन्तु इस क्षेत्र में परिषद् का कार्य बहुत ही पीछे रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के प्राथमिक दायित्व के अनुसार परिषद् को विशिष्ट प्रदेशें की निगरानी का अधिकार प्रदान किया गया है। धारा 83 के अनुसार सामरिक महत्व के क्षेत्रें के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी कार्य जिसमें न्याय समझोते भी शामिल हैं, सुरक्षा परिषद् द्वारा सम्पादित किये जायेंगे। इस कार्य के अन्तर्गत सुरक्षा परिषद् न्याय परिषद् से यह मांग कर सकती है कि वह सामरिक न्यास क्षेत्रों में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक विषयों से सम्बन्ध सामान्य न्यास कामों का सम्पादन करें।

सुरक्षा परिषद का मूल्यांकन

सुरक्षा परिषद् के संगठन और कार्यों के अध्ययन के बाद यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि विश्व-संस्था के संस्थापकों ने इसे विश्व समुदाय की शांति और सुव्यवस्था बनाये रखने का एक प्रभावी साधन बनाना चाहा था। इसलिये संघ के कार्यकारी और सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग के रूप में परिषद् की रचना की गई तथा अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा बनाये रखने का मुख्य दायित्व परिषद् पर ही डाला गया। यह विश्व-समुदाय के लिए एक सजग प्रहरी के रूप में काम कर सके, इसके लिये इसे आरक्षी दायित्व से सम्पन्न किया गया। दुनिया कि किसी भी कोने में होने वाला अन्तर्राज्य विवाद इसके सामने लाया जा सकता है। इसका सत्र कभी समाप्त नहीं होता। कोई भी

अन्तर्राज्य विवाद युद्ध का रूप न ले ले और युद्ध हो जाने पर जल्द-से-जल्द इसे खत्म कराने हेतु उसे प्रभावी तथा व्यापक निरोधात्मक कार्रवाई करने के अधिकार दिये गये हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभी प्रधान अंगों में सिर्फ इसे ही निर्णय लेने का अधिकार है। पर, मात्र अधिकार दे देने से ही कोई संस्था पूर्णतया प्रभावी नहीं हो सकती। यह बहुत कुछ उसके कार्यकरण पर निर्भर करता है। सुरक्षा परिषद् के सम्बन्ध में भी यह बात पूर्णतया सत्य है। चार्टर के द्वारा उसे सारे अधिकारों से विभूषित किया गया है किन्तु व्यवहार में वह उन अधिकारों के प्रयोग में सक्षम नहीं हो पायी है। प्लानों तथा रिग्स के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ के किसी भी अंग तथा अभिकरण में सिद्धांत और व्यवहार में अन्तर नहीं है जितना सुरक्षा परिषद् में। लगभग सभी राजनीतिज्ञ और नेता यह स्वीकार करते हैं कि सुरक्षा परिषद् अपने निर्माताओं की आशायें पूरी नहीं कर सकी है। अब प्रश्न उठता है कि परिषद् अपनी निर्धारित भूमिका के निर्वहन में शिथिल क्यों रही है ? इस प्रश्न का उत्तर है, महाशक्तियों की आपसी फूट, उनके पारस्परिक शीतयुद्ध आदि। निषेधाधिकार का अत्यधिक प्रयोग, राजनीतिक कार्यों में विफलता, दंड-व्यवस्था की निष्क्रियता, निरस्त्रीकरण का अभाव आदि उस मौलिक दोष के लक्षण हैं।

संयुक्त राष्ट्रसंघ में सुरक्षा परिषद् की भूमिका को निरूपित करने के लिये विगत वर्षों में उसके द्वारा सम्पन्न कार्यों पर गौर करना होगा। पिछले कई वर्षों में बीसियों अन्तर्राज्य विवाद सुरक्षा परिषद्द के समक्ष लाये गये हैं। उनमें से कुछ तो परिषद् की विभिन्न कार्यवाइयों के फलस्वरूप सुलझाए जा सके। सुरक्षा परिषद् के प्रयास से ही इंडोनेशिया की समस्या का समाधान संभव हो सका। फिलिस्तीन-समस्या के प्रारम्भिक दिनों में भी सुरक्षा के विवादों में परिषद् को कुछ सफलता मिली थी। कश्मीर में दो बार युद्ध-विराम लाने में, कांगो, साइप्रस तथा पश्चिम एशिया के विवादों में परिषद् का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। अन्तर्राज्य विवादों के शांतिपूर्ण समाधान में परिषद् का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह रहा है कि यह विवादग्रस्त पक्षों के परस्पर विरोधी एवं संकीर्ण हितों पर अन्तर्राष्टर्‍ीय शांति एवं सुरक्षा के विस्तृत संदर्भ में विचार करने का अवसर प्रदान करती है।

फिर भी इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि शांति और सुव्यवस्था के क्षेत्र में सुरक्षा परिषद् की भूमिका उत्साहपूर्वक नहीं रही है। शक्ति-राजनीति के कारण अधिकांश मामलों में वह पंगु साबित हुई है। निषेधाधिकार उसे ज्यादातर गतिरोध की स्थिति में रखता है। पिछले पचास वर्षों में एक बार कोरिया के संदर्भ में सुरक्षा परिषद् द्वारा सैनिक कार्रवाई की गयी ,वह भी ऐसी विशेष परिस्थिति में जो संयुक्त राष्ट्र के संस्थापकों की इच्छा से सर्वथा भिन्न थी। उस समय सोवियत रूस की अनुपस्थिति के कारण ही परिषद् सैनिक हस्तक्षेप का निर्णय ले सकी। फिर खाड़ी संकट के समय (1990-91) इराक के खिलाफ परिषद् ने सैनिक कार्रवाई की। परन्तु अन्य मामलों में यह कोई कारगर कार्यवाही नहीं कर सकी। चेकोस्लोवाकिया के विवाद तथा बर्लिन की नाकेबन्दी के मामले में सोवियत संघ द्वारा निषेधाधिकार के प्रयोग के कारण वह कुछ भी नहीं कर सकी। उसी तरह हंगरी तथा स्वेज संकट के समय भी इसकी भूमिका बिल्कुल नगण्य रही। अगस्त 1968 में चेकोस्लोवाकिया में सोवियत हस्तक्षेप के विरुद्ध जब निन्दा प्रस्ताव पेश किया गया तो सोवियत संघ ने उसके विरुद्ध निषेधाधिकार का प्रयोग किया। परिणामस्वरूप निन्दा का प्रस्ताव भी पारित नहीं किया जा सका। सुरक्षा परिषद् के होते हुये भी पश्चिम एशिया में तनाव का वातावरण बना रहा। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रेक्षकों के बावजूद युद्ध-विराम का उल्लंघन एक आम बात हो गई। सुरक्षा परिषद् द्वारा पारित प्रस्तावों को इजरायल ने खुले तौर पर अवहेलना की। 4 दिसम्बर, 1971 को बांगला देश के प्रश्न पर छिड़ने वाले भारत-पाकिस्तान युद्ध में भी सुरक्षा परिषद् का कीर्तिमान निन्दनीय ही कहा जा सकता है। सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य इस अवसर पर अपने हितों और स्वार्थो से ऊपर नहीं उठ सके। सोवियत संघ ने भारत का समर्थन करने के लिये युद्ध बंद करने का प्रयास कर वीटों का प्रयोग किया और उधर चीन तथा अमेरिका पाकिस्तान के समर्थन में लगे रहे। कुल मिलाकर यह प्रमाणित हो गया कि युद्ध रोकने अथवा होने देने में सुरक्षा परिषद् की क्षमता बहुत सीमित है। अपने लगभग 60 वर्षों के जीवन में संयुक्त राष्ट्रसंघ

को प्रत्येक महत्वपूर्ण राजनीतिक कार्यों में प्राय: विफलता का सामना करना पड़ा है।

अब प्रश्न उठता है कि सुरक्षा परिषद् की महान विफलता इस अल्पावधि में क्यों और कैसे हुई, इसका एक ही उत्तर है- सोवियत गुट और अमरीकी गुट का मतभेद। इसके साथ ही परिषद् को अनेक सीमाओं के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है। सर्वप्रथम, सुरक्षा परिषद् अपनी स्थायी तथा महान् शक्तियों के विरुद्ध कुछ भी कार्रवाई करने में असमर्थ है। न केवल स्थायी सदस्य वरन् उनके पिछलग्गू राज्यों के विरुद्ध भी कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती क्योंकि बड़े राष्ट्र अपने विशेषाधिकार के द्वारा उसे ऐसा करने से रोक देते हैं। वास्तव में जैसा कि निकोलास ने लिखा है कि सुरक्षा परिषद् की स्थापना अपने पांच स्थायी सदस्यों को बाध्य करने वाले अभिकरण के रूप में नहीं की गयी है। परिषद् इन स्थायी तथा महान् सदस्यों की कृति है। ये इसके हिमायती और महान संरक्षक हैं। अत: अपने महान् संरक्षकों के विरुद्ध आदेश देने की शक्ति उसके पास कैसे रहती?

द्वितीयत: सुरक्षा परिषद् का संगठन दोषपूर्ण है। इसके स्थायी सदस्यों का नामोल्लेख चार्टर में कर दिया गया है। इसका अर्थ यह है कि वेसे महान् राज्य की महानता की श्रेणी से नीचे आ गये हों, वे हमेशा स्थायी सदस्य बने रहेंगे। यह व्यवस्था सुरक्षा परिषद् को प्रतिक्रियावादी संस्था बना देगी। अत: चार्टर में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये जिसके आधार पर मान्यता प्राप्त महान् शक्तियों की श्रेणी से नीचे आने वाले राज्यों को स्थायी सदस्यता से वंचित कर उसके स्थान पर जनसंख्या, औद्योगिक एवं सामरिक शक्ति के आधार पर जो देश महान् शक्तियों की श्रेणी में आवें, उन्हें स्थायी सदस्याता प्रदान की जाये। गिनी के विदेशमंत्री वी0बी0 लंसाना ने महासभा के 18वें अिधेवेशन में बोलते हुए कहा कि चार्टर में संशोधन करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि अफ्रीका को सुरक्षा परिषद् में एक स्थायी स्थान प्रदान किया जाये।

तृतीयत:, संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणा-पत्र में सभी राज्यों की संप्रभु समानता का उद्घोष किया गया है। परन्तु सुरक्षा परिषद् में पांच राज्यों को निषेधाधिकार के रूप में विशेष दर्जा प्रदान किया गया है। अन्य राज्यों पर वे कार्रवाई कर सकते हैं, पर शेष सभी राज्य मिलकर भी निर्णय करें, तब भी उनमें से एक के विरुद्ध भी उंगली नहीं उठा सकते। उनकी सहमति के साथ ही उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है। परन्तु कोई भी अपने विरुद्ध स्वयं ही कोई कार्रवाई करने की अनुमति कैसे देगा ? अत: सुरक्षा परिषद् के संगठन में संप्रभु समानता की बात कहाँ रहीं ?

चतुर्थत: सुरक्षा परिषद् में महाशक्तियों को मिली निषेधाधिकार की शक्ति संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा की जाने वाली सुरक्षा की कार्रवाई के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट है। इसके कारण सुरक्षा परिषद् शांति और सुरक्षा की व्यवस्था के अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने में असमर्थ हो गई है। जब कभी भी वे कोई महत्वपूर्ण निर्ण लेने बैठती है, निषेधाधिकार के प्रयोग के द्वारा उसे ऐसा करने से रोका जाता है। इसके सामने अभी तक बीसियों विवाद आये हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश को सुलझाने में यह असफल रही है क्योंकि इसके स्थायी सदस्यों में से कोई-न-कोई निषेधाधिकार का प्रयोग कर देता है। फलस्वरूप सुरक्षा परिषद् की प्रतिष्ठा में काफी ह्रास हुआ है। आज स्थिति ऐसी है कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के सिद्धान्त में विश्वास करने वाला कोई भी राज्य अपने को सुरक्षा परिषद् में नहीं ले जाना चाहता। सर होमी मोदी ने ठीक ही कहा था : “स्थायी सदस्यों के निषेधाधिकार ने सुरक्षा परिषद् के प्रभावी कार्यकरण को निर्बल बना दिया है।” पीटर स्टार्सबर्ग के शब्दों में, “सोवियत रूस ने अपने निषेधाधिकार से सुरक्षा परिषद् को पंगु बना दिया है।”

परन्तु बहुत से लेखकों की राय में सुरक्षा परिषद् की असफलता का मुख्य कारण इसके स्थायी सदस्यों के बीच एकता का अभाव रहा है। युद्धोतर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में जब शीत युद्ध का समावेश हुआ और दुनिया दो खेमों में

बंट गई तब इनका असर सुरक्षा परिषद् पर भी पड़ना शुरु हुआ। यह भी दो भागों में विभाजित हो गई। इसका प्रभाव छोटे-बड़े विवादों पर पड़ा। फलस्वरूप सुरक्षा परिषद् सौम्यीकरण का माध्यम न रहकर महान् शक्तियों के विभेदों को प्रकाश में लाने का साधन हो गई। यह सिर्फ ऐसे संघर्षों का निदान कर सकती है जो शीतयुद्ध से अलग हों। क्लॉड का विचार है कि सुरक्षा परिक्षद् केवल 'No mans land of the cold war' में ही सफल हो सकती है, वैसे विवादों में नहीं हो शक्ति गुटों के संघर्षों से सम्बन्ध हो।

पंचम:, संयुक्त राष्ट्रसंघ की दंड-व्यवस्था भी पूर्णतया दोषमुक्त नहीं है। महाशक्तियों की इच्छा के विरुद्ध न तो इसे लागू किया जा सकता है और न उसे सफल ही बनाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, सदस्य-राज्यों के असहयोग के कारण रोडेशिया के विरुद्ध लगाया गया आर्थिक प्रतिबन्ध सफल नहीं हो सका। सैनिक प्रतिबन्ध की संभावना तो अब और भी क्षीण हो गई है। चार्टर के अनुसार सुरक्षा परिषद् को सदस्य-राज्यों के असहयोग के साथ सैनिक दंड-व्यवस्था लागू करने के लिये समझौता करने का अधिकार दिया गया है। परन्तु सोंवियत संघ एवं पाश्चात्य राज्यों के आपसी मतभेद के कारण सुरक्षा परिषद् एवं अन्य राज्यों के बीच कोई समझौता नहीं हो सका। परिणामस्वरूप सुरक्षा परिषद् के लिये स्थायी या अस्थायी किसी भी तरह की सेना की व्यवस्था नहीं हो सकी है।

षष्ठ:, सुरक्षा परिषद् में निषेधाधिकार के बार-बार प्रयोग होने से तथा वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य के परिप्रेक्ष्य पर परिषद् में उत्पन्न होने वाले गतिरोध के कारण सुरक्षा परिषद् की तुलना में महासभा के महत्व एवं प्रभाव में वृद्धि हुई है। 'शांति के लिये एकता प्रस्ताव' ने महासभा की स्थिति को सुरक्षा परिषद् से अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। इस प्रस्ताव के अनुसार यदि कभी शांति के लिये संकट पैदा हो अथवा शांति भंग हो अथवा आक्रमण हो जाए और सुरक्षा परिषद् अपने स्थायी सदस्यों द्वारा निषेधाधिकार प्रयोग किये जाने के कारण कोई कार्रवाई नहीं कर सके तो महासभा उस विवाद को अपना संकटकालीन अधिवेशन बुला कर तुरन्त अपने हाथ में ले सकती है और स्थिति का मुकाबला करने के लिये सामूहिक कार्रवाई का सुझाव दे सकती है, जिसमें शांति भंग होने या आक्रमण की स्थिति में सशस्त्र सेना के उपयोग का सुझाव भी शामिल है। इस प्रस्ताव का व्यवहार करके सन् 1956 में परिषद् में गतिरोध उत्पन्न होने पर महासभा के द्वारा ही मध्यपूर्व के लिये सेना की व्यवस्था की गयी। सन् 1967 के जून में युद्ध के बाद पश्चिम एशिया की स्थिति पर विचार करने के लिये महासभा की आपातकालीन बैठक बुलाई गयी थी। सन् 1980 में अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप तथा उसी वर्ष जुलाई में फिलिस्तीन के प्रश्न पर विचार करने के लिए महासभा का विशेष अधिवेशन बुलाया गया। इस प्रकार सुरक्षा परिषद् की अकर्मण्यता से महासभा की शक्तियों में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। सुरक्षा परिषद् की प्रतिष्ठा में कमी आने का एक अन्य कारण यह है कि संघ में एशियाई-अफ्रीकी राज्यों की संख्या में बड़ी तीव्रता से वृद्धि हुई है। ये राज्य महासभा के हिमायती तथा सुरक्षा परिषद् के विरोधी हैं। उनके प्रयास से भी परिषद् की कीमत पर महासभा के प्रभाव में वृद्धि हुई है।

उपर्युक्त कारणों के चलते शांति और सुरक्षा के मामले में सुरक्षा परिषद् का कीर्तिमान बिल्कुल उत्साहवर्द्धक नहीं रहा है। कुछ मामलों में प्रभावशाली भूमिका अदा करते हुए भी कुल मिलाकर इसका इतिहास इसके निर्माताओं की आशा के अनुकूल नहीं रहा है। व्यवहार में यह महाशक्तियों के हाथों का खिलौना बनकर रह गयी है। अधिकांश मामलों में उसी नीति तथा कार्य-प्रणाली बहुरंगी, दुमुँही और शिथिल रही है। चाहे कश्मीर का प्रश्न हो या अरब इजरायल का, चाहे दक्षिण रोडेशिया का प्रश्न हो या हंगरी का, विगत वर्षों में यह किसी भी समस्या के स्थायी समाधान में सफल नहीं हुई है। प्रत्येक बड़े संघर्ष के बाद इसने मात्र युद्ध-विराम कराने की भूमिका ही निभायी है। जुड़वाँ बच्ची की तरह उलझी हुई वियतनाम की समस्या में तो यह उस भूमिका को भी नहीं निभा सकी। इसके रहते हुये अनेक अवसरों पर तो दुर्बल पक्ष को निम्नतम न्याय भी नहीं मिल सका है। पाकिस्तानी सैनिक

तानाशाही की एड़ के नीचे कराहते हुए बांगला देश के मामले में परिषद् ने अपने जिस निष्क्रिय अभिनय का परिचय दिया वह अवश्य ही विश्व-संस्था के लिये घोर कलंक की बात रही है। किन्तु खाड़ी युद्ध में शक्तियों की एकता के कारण सुरक्षा परिषद् को आक्रामक इराक के विरुद्ध कार्रवाई करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई। परिषद् के निर्णय के तहत इराक के विरुद्ध जो आर्थिक प्रतिबन्ध तथा सैनिक कार्रवाई की गई उससे इराक की रीढ़ टूट गई और उसे बाध्य होकर सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव को मानने के लिये बाध्य होना पड़ा। 12 अपे्रल 1991 की प्रात: 3.30 बजे इराक में औपचारिक स्थायी युद्ध विराम लागू हो गया और इसके साथ ही युद्ध समाप्त हो गया। इससे पूर्व संयुक्त राष्ट्रसघ सुरक्षा परिषद् ने कुछ शर्तें रखी थी जिन्हें इराक ने बिना शर्त स्वीकार कर लिया। शर्तों में इराक से कहा गया कि वह समस्त जैविक परमाणु हथियारों व उसके भंडारों के बारे में सूचना देगा और संयुक्त राष्ट्रसंघ की देखरेख में उन्हें नष्ट कर देगा। वह कुवैत को कभी भी हस्तगत नहीं करेगा। युद्ध-विराम की देख-रेख के लिये एक संयुक्त राष्ट्र इराक-कुवैत पर्यवेक्षक दल बनाया गया। इसमें लगभग 14,000 अधिकारी ओर सैनिक होंगे। यह सुरक्षा परिषद् की सफलता का बहुत बड़ा उदाहरण है। बाद में सोमालिया तथा बोस्निया के मामलें में सुरक्षा परिषद् को निणैय लेने में कोई कठिनाई नहीं हुई है।

अत: निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि सुरक्षा परिषद् की असफलताओं में इसके संगठन या कार्य-प्रणाली का उतना दोष नहीं है जितना वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय आचरणों के मानदण्डों, निहित स्वार्थों तथा शक्ति राजनीति का। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का प्रत्येक विद्यार्थी इस तथ्य से भली भांति परिचित है कि युद्धोतर विश्व शक्तिपरस्त राज्यों के शीतयुद्ध के राजनीतिक अभिनय को एक दुर्बल द्रष्टा-सा देखता रहा है क्योंकि इसके अभिनेता बड़े राष्ट्र रहे हैं। इसके द्वारा किये गये प्रयासों पर शीतयुद्ध की छाया रही है। अर्थात् शांति और सुरक्षा के मामले में सुरक्षा परिषद् की असफलता का कारण शक्ति राजनीति रहा है, न कि उसका संगठनात्मक तथा संरचनात्म्क दोष। यही कारण है कि शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद विशेषकर मई, 1990 के बाद सुरक्षा परिषद् की भूमिका में स्पष्ट बदलाव आया है। लिबिया, बोस्निया तथा सोमालिया के मामले में परिषद् द्वारा लिये गये निर्णय बदले हुए परिप्रेक्ष्य में सुरक्षा परिषद् के प्रथम शिखर को रेखांकित करते हैं। जनवरी, 1992 में सुरक्षा परिषद् के प्रथम शिखर सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र के लिये शीतयुद्धोत्तर कार्यक्रम का निर्धारण करना था। सम्मेलन में शामिल विश्व के नेताओं ने आ़क्रमण तथा शांति के भय का सामना करने के लिये सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था के प्रति जो प्रतिबद्धता दिखलाई, उससे सुरक्षा परिषद् को व्यापक भूमिका की संभावनायें हैं।